Chapter-1

प्रथम - अध्याय

लोकगीत : परिभाषा, स्वरूप, विकास और वर्गीकरण

मानव की आरम्भिक बर्बरावस्था से आज की इस सुसभ्यावस्था तक की विकास-यात्रा में भावाभिव्यक्ति हेतु अनेक भाषाओं का क्रमशः प्राकट्य हुआ । इन सभी भाषाओं में न्यूनाधिक रूप में साहित्य-सर्जना हुई परन्तु अनेक भाषाओं के लोक साहित्य का साहित्य संसार में पूर्ण ज्ञान नहीं है । लोक-साहित्य संज्ञा से अभिहित किया जाने वाला साहित्य आज भी साधारण जनता द्वारा पूर्ववत् समादृत है । इस साहित्य की जीवन्त और युगसापेक्ष्य शक्ति कराल काल की विध्वंसक विभूति को भी पराभूत कर अद्यावधि सर्वसाधारण के आह्लादन के साथ ही उसमें विकट विषमताओं तथा सामाजिक विडम्बनाओं को सहर्ष स्वीकारने की भावना संचरित कर रही है । युग-विशेष में संवेग प्रसूत होने वाली भावना या धारणा एवं प्रचुर परिमाण में तद्विषयक सर्जित होने वाले साहित्य (यथा: भक्तिकालीन-साहित्य, रीतिकालीन साहित्य, डिंगल का वीर गाथात्मक साहित्य) की भांति लोक-साहित्य ने कभी भी एकांगी दृष्टिकोण नहीं अपनाया । सर्वत्र और सभी कालों में सभी प्रकार के विचारों एवं तथ्यों का वर्णन कर लोक-साहित्य ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है । कुछ विद्वानों के अनुसार लोक-साहित्य यांत्रिकता के प्रसार के फलस्वरूप लुप्तप्राय होता जा रहा है । वस्तुतः इस कालजयी साहित्य की परिवर्तनधर्मा प्रकृति ने युगानुरूप आवश्यक परिवर्तन को स्वीकार कर अपने अस्तित्व को बनाये रखा है ।

(१) "लोक" शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ और प्राचीनता :

भारत में आर्य-भाषाओं का आदिरूप हमें संस्कृत में मिलता है । 'लोक' शब्द भी हमें संस्कृत में शुद्ध तत्सम रूप से मिलता है । व्युत्पत्ति के अनुसार 'लोक' शब्द 'लोकृ-दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है ।[१] संस्कृत में इस धातु से देखने के भाव का अर्थ-बोध होता है । व्युत्पत्ति के आधार पर 'लोक' का शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है ।

१. सिद्धान्त-कौमुदी, पृष्ठ ४१६ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १६८६

इस निष्पत्ति के अनुसार वह समस्त जन-समुदाय, जो देखने के कार्य को सम्पन्न करता है, ` लोक ` कहलाता है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कोशों में ` लोक ` शब्द के विविध अर्थ इस प्रकार दिये गये है । यथा -

लोक - भुवन, जगत्, जन, प्रजा मनुष्य । [१]

- संसार, विश्व का विभाग, पृथ्वी, मानव-जाति, प्रजा, समूह, प्रांत, दृश्य, कक्ष, सात और चौदह की संख्या । [२]

- लोग, मनुष्य, व्याकरण, यम, शि, नाम, कीर्ति, संतान, भुवन, सृष्टि के विभाग आदि । [३]

आंग्ल - भाषा में ` लोक ` शब्द का समानार्थी शब्द ` फोक ` (Folk) है, जिसके विषय में आंग्ल-भाषा के एक प्रसिद्ध शब्द कोष [४] में इस प्रकार से विचार व्यक्त किये गये है -

1. People in general, or any part of them without distinction, formarely alike in both singular and plural, but now the plural folks is most used; as folks will talk, some folks say so.
2. The members of one's family; one's relatives; a colloquial use in the plural in the United States; as, the folks down home on the form, his folks are Yankees.
3. A race of people; a nation; a community.

उपर्युक्त विविध अर्थों को देखने पर पता चलता है कि प्राय: सभी ने ` लोक ` शब्द को जन, प्रजा, मानव - जाति आदि के पर्याय शब्द के रूप में ग्रहण किया है । ` लोक ` के शाब्दिक अर्थ पर विचार कर लेने के पश्चात् इस शब्द के प्रयोग की प्राचीनता एवं इस शब्द के विविध - संदर्भों के अन्तर्गत किए गए प्रयोगों का उल्लेख करना भी आवश्यक है ।

---

१. हलायुध कोश :- सं० जयशंकर जोशी, पृ० ५८१
२. The practical Sanskrit English Dictionary-V.S.Apte, P.820.
३. हिन्दी-शब्द- कल्पद्रुम- सं०पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ६३४-६३५.
४. Webster's new twentieth centuary dictionary- P. 681.

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष - सूक्त में ` लोक ` शब्द का प्रयोग जीव एवं स्थान दोनों अर्थों में हुआ है ।

` नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।`[1]
इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में ` लोक ` शब्द के लिए जन[2] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है ।

यजुर्वेद में लोक (समाज) की विराट कल्पना की गई है । यह पुरुष रूप ईश्वर है । उसके सहस्त्रों मुख, सहस्त्रों नेत्र और सहस्त्रों पद है ।[3] जैमिनिय उपनिषद् ब्राह्मण[4] ग्रंथ में लोक की विशालता की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि नानाविध प्रसृत लोक प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त है एवं प्रयत्नपूर्वक भी इसे पूरी तरह नहीं जाना जा सकता है ।

लोक, जिसे समाज के पर्याय के रूप में स्वीकृत किया गया; कालान्तर में समाज का एक अंग मात्र रह गया । शनैः शनैः समाज दो भागों में विभाजित हो गया - वेद - रीति प्रधान समाज और लोक - रीति प्रधान समाज । इस प्रकार अनेक प्रकार से फैला हुआ लोक सीमित अर्थ को ग्रहण करके वेद से विलग हो गया । वेद, दर्शन और ज्ञान से गर्वित रहा और लोक - परम्परा से पालित । वेद और लोक के विभेद को कई मनीषियों ने अपनी पोथियों में व्यंजित किया है ।

महावैयाकरणाचार्य पाणिनी ने वेद से विलग लोक की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया है । उन्होंने अनेकानेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए स्पष्टतः उल्लेख किया है कि वेद में इसका स्वरूप इस प्रकार का है, परंतु लोक में इसका स्वरूप भिन्न, समझना चाहिये । महाभाष्यकार पतंजलि ने

---

१. ऋग्वेद १०।९०।१४.
२. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवं। विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं ।
-ऋग्वेद ३।५३।१२.
३. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः । - यजुर्वेद ३१.
४. बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः। क एतद् अस्य पुनरीहितो अयात ।
-जैमिनिय उपनिषद् ब्राह्मण, ३।२८.

लोक में प्रचलित ' गौ: ' शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में किया है ।[१]

भरत मुनि ने नाट्य - शास्त्र में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोक - धर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख कर लोक की पृथक सत्ता को स्वीकार किया है ।[२] महर्षि व्यास ने ' लोक ' शब्द का प्रयोग जन-साधारण के अर्थ में किया है ।[३] अन्यत्र महाभारत में ही व्यास ने ' प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर: ' कहकर लोक की महत्ता स्वीकार की है । भगवान श्री कृष्ण ने श्री भग्वद गीता में लोक - संग्रह पर बहुत बल दिया है । वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं -

' कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय: ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।।'[४]

महाभारत और भगवद्गीता में क्रमश: ' वेदात्च वैदिका: शब्दा: सिद्धा लोकाच्च लौकिका:', तथा ' अतो ऽस्मिलोके वेदे च प्रथित: पुरूषोतम:' आदि लोक - वेद - विधि में विरोध को व्यक्त करने वाले और भी अनेक वाक्य मिलते है । प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त ' लोक-जत्ता', 'लोकप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्व व्यक्त करते हैं । बौद्ध - धर्म के प्रचार के साथ ही ' लोक ' शब्द मनुष्य मात्र के भाव से भूषित हुआ । प्रजा-पालक नृपति अशोक के शिलालेखों में व्यवहृत ' लोक ' का शाब्दिक अर्थ समग्र प्रजाजनों के हित में हुआ है ।

उक्त विवरण पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि यंहा 'लोक' शब्द वेद-विरोधी होते हुए भी अपने आप में विशद अर्थ को समेटे हुए है । पर साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त लोक शब्द इतना विशदार्थी नहीं है । अत: यहाँ पर साहित्य विशेषण को द्योतित करने वाले शब्द 'लोक' की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं प्रस्तुत की जा रही हैं :--

---

१. केषां शब्दानाम् ? लौकिकानां वैदिकानां च । एककैस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशा । तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी- गोणी-गोता-गोपो- तालिकेत्येवमादयो पभ्रंशा: । - ~~महाभाष्य पश्चशान्हिक~~ महाभाष्य -

२. पश्चशान्हिक अज्ञानातिमिरांधस्य लोकस्य तु विचेष्टत: ।

३. नाट्यशास्त्र - चौदहवां अध्याय - भरतमुनि:

४. आदि - पर्व १।१०१-२

५. गीता ३।२०

` लोक शब्द का अर्थ `जानपद` या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है । ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल एवं अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं ।`[१] `.......... लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है । ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोक - तत्व कहलाते हैं ।`[२]

विश्वभारती, शांतिनिकेतन के उड़िया-विभागाध्यक्ष डॉ० कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों को परिभाषित करते समय ` लोक ` शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है -

` लोक-गीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रह कर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं ।`[३]

` लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है । लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है । अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है । लोक, लो की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म-शास्त्र है । इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है । लोक पृथ्वी मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है ।`[४]

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी: `जनपद,` वर्ष १; अंक १, पृ० ६५
२. हिन्दी - साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ६८६ सं० धीरेन्द्र वर्मा
३..........the people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences.' - A study of Orisean Folklore-Dr.Kunji Bihari Dass.
४. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, सम्मेलन,-पत्रिका, (लोक संस्कृति विशेषांक - २०१० पृ० ६५)

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने निम्न पंक्तियों में `लोक' और `शास्त्र' के विभेद को सुन्दर ढंग से समझाया है -

` किसी व्रत, नियम या छंद के भीतर बंधा हुआ जो धार्मिक जीवन है वह शास्त्रीय या मार्गीय या नियमानुगत कहा जायेगा । किंतु इसके अतिरिक्त जो शास्त्रीय - सीमाओं और व्रतों से अतिरिक्त है, जिसे अथर्ववेद के शब्दों में व्रात्य - जीवन कहेंगे वह लोक धरातल पर विकसित होने वाले समाज का विराट जीवन माना जाएगा । XXX शास्त्र परिष्कृत उपवन है और लोक अरण्य है । XXX शास्त्र की दृष्टि बुद्धि के मंथन का फल है । लोक की दृष्टि हृदय के मंथन से मिलने वाला वरदान है । हृदय और बुद्धि का अन्तर ही लोक और शास्त्र का अंतर है, जैसा कि गोसाइंजी ने कहा है - ` हृदय सिंधु मति सीप समाना ।'[१]

इसके अतिरिक्त आपने यह भी बताया है कि वर्तमान में जो लोक है वही भूतकाल का शास्त्र बन जाता है । प्राचीन को आपने शास्त्र बताया है एवं नूतन को लोक ।

`..... लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है । यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है । भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्राय: उल्लेख किया जाता है । किन्तु ` लोक ` दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है । वही समाज का गतिशील अंग है ।'[२]

डॉ० श्याम परमार ने साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले ` लोक' शब्द की उक्त संदर्भ में सीमा-निर्धारित निम्न प्रकार से की है ।[३] आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में ` लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परम्पराएं, भावनाएं, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा

---

१. वरदा (भारतीय संस्कृति में लोक-तत्व- डॉ०अग्रवाल) पृ०३-४ जन०१६५८ वर्ष १ अंक १.

२. भारतीय लोक साहित्य - डॉ० श्याम परमार, पृ० ६-१०

३. वही पृ० ११

और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे है, के अर्थ में होता है।[१]

उक्त विवेचन से बोध होता है कि समाज दो वर्गों में विभक्त है। एक उच्च एवं सुसभ्य वर्ग है जो पांडित्य से परिपूर्ण है और दूसरा निम्न या असभ्य वर्ग है जो परम्परा का पालन-कर्ता है एवं जिसे `लोक` संज्ञा से अभिहित किया जाता है। परन्तु यंहा यह ज्ञातव्य है कि लोक-साहित्य में लोक-मानस की अभिव्यक्ति होती है। अत: हमें साहित्यिक विशेषण `लोक` की लोक-मानस को ध्यान में रखकर व्याख्या करनी होगी। सभ्य से सभ्य एवं सुशिक्षित व्यक्ति में भी कुछ न कुछ अंश में हमें आदिम मानस-तत्व मिलता है। फलत: कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण समाज में जंहा तक परम्पराएं पथ-प्रदर्शित करती हैं, प्राकृतिक विश्वास (देवी देवता में, जादू टोने में, मंत्र तंत्र में) सबलता प्रदान करते हैं, शकुन राह के अवरोधक तत्व बनते एवं अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं, विविध पशु-पक्षियों की बोलियां भवितव्यता का बोध कराती हैं, सूत्र बंधन मात्र से भूत-प्रेतादि पीड़ित का पिण्ड त्याग कर भाग खड़े होते हैं, अति-प्राकृतिक तत्वों की विद्यमानता की पुष्टि में प्रबल तर्क दिये जाते हैं, धार्मिक भावना से अभिभूत होकर औषधि का त्याग करके किसी पीर-पैगम्बर या देव के चरणामृत का पान कर संतुष्ट हुआ जाता है, उस सीमा तक प्रत्येक व्यक्ति `लोक` की श्रेणी में प्रगणित होगा- नागरिक या ग्रामीण कोई भी क्यों न हो।

`लोक` शब्द के आंग्ल भाषा के प्रतिरूप (Folk) फोक शब्द का पूर्व रूप Folc निश्चित किया गया है। यह शब्द एंग्लो - सेक्शन शब्द है और यह जर्मनी में Volk रूप में प्रचलित है। आंग्ल भाषा में यह शब्द असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का बोध करवाता है। इसके साथ ही साथ सर्व साधारण एवं राष्ट्र के समग्र लोगों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। Folk के विषय में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में बताया है कि आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (Folk) होते है और

---

१. भारतीय लोक साहित्य - डॉ० श्याम परमार, पृ० ११

विस्तृत अर्थ में इस शब्द से सभ्य से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है । किन्तु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे संयुक्त शब्दों (जैसे लोकवार्ता Folklore), लोक - संगीत (Folk Music) में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक - संस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यत: परे है, जो निरक्षर - भट्टाचार्य है अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है - ग्रामीण और गंवार ।

एक अन्य विद्वान डॉ० बाकर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से सुदूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है परन्तु इसका विस्तृत अर्थ लिया जाय तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के समग्र लोग इसी नाम से पुकारें जायेंगे ।

' लोक ' शब्द को लेकर पौर्वात्य तथा पाश्चात्य मनीषियों ने प्राय: साम्य रखने वाले विचारों को ही अभिव्यक्त किया है । आधुनिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि ' लोक ' शब्द ने न केवल एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य को ही अलंकृत किया अपितु आज के समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का भी वाचक बन गया है । साहित्यिक संदर्भ को रखते हुए ' लोक ' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है :--

' वह वर्ग विशेष, जो अतर्क्य भाव से अन्ध - श्रद्धालु की भांति पूर्ण आश्वस्त होकर प्रकृति के कण-कण में दैविक - सत्ता के दर्शन करता है ; शुद्ध - प्रबुद्ध एवं पुस्तकीय ज्ञान से गर्वित मानस की तरह छल - प्रपंचों से परिपूर्ण नहीं है; शास्त्रीयता की शृंखलाओं से आबद्ध नहीं है; स्वानुभूत ज्ञान के आधार पर जीवित है; राजनीति के दांव - पेचों से पूर्णत: अनभिज्ञ है; आधुनिक वैज्ञानिक युग की जटिलताओं से आपूर्ण जीवन से सतत संघर्ष करता हुआ आज भी रूढ़ परम्पराओं का पुजारी है ; पावस-काल रूपी पावन अतिथि को सस्नेह आमंत्रित करने हेतु नर - मेघ आदि अनेक अंध-विश्वासों को पूर्णतया स्वीकारने वाला है, लोक है । इसके मानस से प्रणीत निरलंकृत - नैसर्गिक - भाव - सौन्दर्य से सम्पन्न, आदि-कवि वाल्मीकि के मुखारविन्द से सहजाभिव्यक्त प्रथम श्लोक की भांति प्रकट होने वाला, साहित्य ही लोक - साहित्य की संज्ञा से

अभिहित किया जाता है । स्वाभाविकता, सहजोद्रेकता एवं सरलता इसके प्रधान गुण है । इसके प्रत्येक शब्द में हृदय - स्पर्शिणी अद्वितीय शक्ति है । विद्वानों के वैचारिक जाटिल्य से अनवगत भाव - जगत का निवासी जन ही लोक है । `

उक्त विवेचित लोक की शाश्वत अभिव्यक्ति - परम्परा ही लोक-साहित्य है । इस लोक के मानस की अभिव्यञ्जना नाना प्रकारेण हुई है । लोक प्रतिदिन जिस प्रकार का जीवन-यापन करता है उसी को उसने अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की है । इस संपूर्ण अभिव्यक्ति में साहित्यिक रूपों के साथ नैतिक - मूल्यों, रीति-रिवाजों, विश्वासों, धारणाओं आदि को भी यथेष्ट स्थान मिला है । आज के युग में आदिम मानस अध्ययन हेतु उक्त समस्त तत्वों और रूपों का पूरा-पूरा महत्व है । समग्र लोकाभिव्यक्ति के एक अंग (लोक-साहित्य) की साहित्यिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्ता है ।` लोक ` का गंभीर अध्ययन करने वाले अध्येताओं ने इस संपूर्ण लोकाभिव्यक्ति को ` लोक - वार्ता ` शब्द से अभिहित किया है । लोक-साहित्य, लोक-वार्ता का एक अंग मात्र है । परम्परा के पुजारी, पूर्वजों के रीति-रिवाजों, अंध-विश्वासों आदि को अतर्क्य भाव से सश्रद्ध स्वीकारने वाले लोक-मानस ने गीतों, कहानियों, गाथाओं, नाट्यों, प्रहेलिकाओं आदि के माध्यम से सामाजिक पक्षों को समक्ष रख कर अपने मधुरिम तथा विषम भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की, वही लोक-साहित्य की संज्ञा से जानी जाती है ।

`` लोक `` शब्द पर विचार कर लेने के पश्चात् यह समीचीन प्रतीत होता है कि `` गीत `` शब्द पर विचार किया जाय क्योंकि गीत संबंधी विचार नहीं हो जाता तब तक श्रृंगारी लोकगीतों की बात उठाना उचित प्रतीत नहीं होता है । इस दृष्टि से यहां क्रमश: गीत और लोकगीत की विवेचना की जा रही है ।

----

(२) 'गीत' का शाब्दिक अर्थ :-

सामसंहिता-भाष्य के अनुसार आभ्यन्तर प्रयत्न से स्वर-ग्राम की अभिव्यक्ति गीत है । गीत के दो भेद माने गये हैं - वैदिक और लौकिक । वैदिक गीतों की चर्चा गेयपद के अन्तर्गत हुई है । शास्त्रीयता के आधार पर ~~लौकिक~~ लौकिक गीत के भी दो विभेद हैं - मार्ग और देशी । शास्त्र निरूपित परम्परा का निर्वाह मार्ग में होता है, जिसके लिए नाट्यशास्त्रकर्ता भरत को ही प्रमाण माना गया है । भगवान् शंकर इसके आद्याचार्य हैं, अत: उनके प्रीत्यर्थ इसका विधान है । विभिन्न भू-भागों के निवासियों की रुचि और रीति के विभेद से गीत के रूपों की भिन्न भिन्न परिणतियां है और इनकी संज्ञा देशी है । साहित्य में जिसे गीत कहते हैं, उसका सम्बन्ध विशेष रूप से देशी विभेद से है । गायकों द्वारा मान्य पदों की स्वीकृति साहित्यिक तत्वों के कारण नहीं, बल्कि संगीत तत्व के कारण है । लोकगीतों का परिस्फुटित रूप ही साहित्यिक गीत है । गेय पदों में जहां शास्त्रीय संगीत के विधान को काव्य की समकक्षता प्राप्त है, वहां गीतों में देशी संगीत पद्धति का नियमन रहता है । लौकिक कंठ्य संगीत का यह साहित्यिक अभिमान है ।

प्रारम्भिक गीत लौकिक जीवन सम्बन्धी थे, जिस विधान का उपयोग धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिये किया गया । सन्तकाव्य की अधिकांश गीतात्मक रचनाएं ऐसी कोटि की हैं । कई व्यक्ति समूह बनाकर जब गाते हैं तो यह 'समवेतगीत' का रूप धारण करता है । उपरूपकों में से कई एक ऐसे हैं, जो समवेत गीत के विकसित और अभिनयात्मक रूप हैं ।

(३) लोकगीत : परिभाषा और स्वरूप

लोक गीत शब्द के ये अर्थ हो सकते हैं - (१) लोक में प्रचलित गीत, (२) लोक निर्मित गीत, (३) लोक विषयक गीत । वस्तुत: लोक विषयक गीत शब्द का अर्थ इस प्रसंग में अभिप्रेत नहीं । लोक गीत लोक में प्रचलित गीत ही होता है, पर इस प्रचलन के दो अर्थ हो सकते हैं । एक तो किसी समय विशेष मात्र में प्रचलित । ऐसा होता है कि कभी कभी कोई गीत कुछ समय के लिए लोक में बहुत प्रचलित हो जाता है । यह प्रचलन अस्थायी होता है । कुछ समय

उपरान्त वह समाप्त हो जाता है । ऐसे अत्यन्त अस्थायी गीत लोकगीत के अन्तर्गत नहीं आयेंगे । दूसरे अर्थ में ऐसा प्रचलन आता है जिसकी एक परम्परा बनती है, जो कुछ पीढ़ियों तक चलती जाती है । किन्तु ऐसे गीतों के भी दो प्रकार होते हैं । हमें आज भी तुलसी, सूर, कबीर के भजन परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते मिलते हैं । ये गीत भी यथार्थत: लोक गीत की सीमा में नहीं आ सकते । लोक गीत तो वह प्रकार है, जिसको ऐसे किसी व्यक्तित्व से सम्बंधित नहीं किया जा सकता, जिसकी मेधा लोक-मानस की स्वाभाविक मेधा नहीं । जब ऐसा है तभी यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि तो क्या लोकगीत लोक द्वारा निर्मित होते हैं ?

अभाववादी व्यक्ति यह मानेंगे कि लोक कोई ऐसी सत्ता नहीं जो गीत बना सके । लोक तो मनुष्यों का ही समूह है, उसमें से कोई एक व्यक्ति ही गीत बना सकता है । इस कथन में सत्य अवश्य है, पर लोकगीत वस्तुत: वही हो सकता है, जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता । वह लोक-मानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है । वह लोक का अपना गीत होता है, जो परम्परा में पड़ जाता है और परम्परा उसमें समय समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है ।

ऐसे लोकगीतों में एक ओर तो ऐसे गीत हो सकते हैं, जिनमें लोकवार्ता - तत्व समाविष्ट हों । ऐसे गीतों में भू-विज्ञानविद् के लिए बहुत सामग्री रहती है । दूसरी ओर ऐसे भी गीत लोकगीत होते हैं, जिनमें लोक अपने मनोरंजन के उपकरण जुटाता है । इन दोनों प्रकार के गीतों में लोक-संस्कृति के विविध चरण परिलक्षित होते है । एक ओर लोकगीत जो अपौरुषेय भी होते हैं, ऐसे गीत, जिन्हें स्त्रियां ही गाती हैं । विविध अनुष्ठानों के अवसरों पर ये अपौरुषेय गीत गाये जाते हैं । दूसरी ओर केवल पुरुषों के गाने के भी गीत होते हैं । ये प्राय: लोकरंजक होते हैं । स्त्री - पुरुष दोनों मिलकर सामूहिक रूप में भी गाते हैं । बच्चों के गीतों में अद्भुत कल्पना का कटाटोप होता है अथवा शिक्षा होती है । बालिकाओं

के गीत भी अलग मिलते हैं । ये गीत उनके खेलों से संबंधित रहते हैं । जैसे प्रत्येक अनुष्ठान के साथ कोई न कोई गीत रहता ही है, वैसे ही ऋतुओं के अनुकूल भी गीत होते हैं । गीतों का संबंध मनुष्य के कामों और गतियों से भी रहता है । चक्की पीसते समय कोई न कोई गीत गाये जाते हैं । गीत छोटे भी होते हैं और बड़े भी, इतने बड़े हो सकते हैं कि कई दिन उनके गाने में लगें । इन बड़े गीतों में प्राय: कोई लम्बी कथा ही रहती है । ऐसे गीतों के नाम उनके विषय के अनुरूप होते हैं और उनकी तर्ज भी बंध जाती है । ` ढोला ` नामक गीत नल के पुत्र ढोला के नाम पर है और ` ढोला ` गीत की एक तर्ज का भी नाम है ऐसे ही ` आल्हा ` । कुछ गीत किसी विशेष गायक वर्ग से सम्बन्धित होते हैं । यह वर्ग उन गीतों को गा-गाकर अपनी आजीविका चलाते हैं । भोपा `` भैरों `` के गीत गा-गाकर भिक्षा एकत्र करते हैं । कुछ विशेष नामवाले लोकगीत भी है जैसे `` साके `` । साकों में किसी वीर की गाथा रहती है । ` पंवारा ` भी ऐसा ही होता है ।

लोकगीत अत्यंत महत्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति है । विदेशों में लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत आगे बढ़ गया है । भारत में तो अभी संग्रह का काम भी वैज्ञानिक परिपाटी पर नहीं हो पाया है । उनकी लय, सुर, ताल, चरण, टेक, प्रकृति और प्रत्येक के इतिहास या विज्ञान का अध्ययन तो आगे की बात है । लोकगीतों को अब साहित्यिक अनुसंधान का विषय बनाया गया है ।

लोकगीतों के स्वरूप एवं परिभाषा पर विचार करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं । इनमें कुछेक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण मत यहां उद्धृत किये जाते हैं । यथा -
`` लोकगीत उस जनसमूह की संगीतमयी काव्य रचनाएं हैं, जिसका साहित्य लेखनी अथवा छपाई से नहीं वरन् मौखिक परंपरा से अविरत रहता है ।``[१]

---

१. "Folksongs comprise the poetry and music of the groups whose literature is perpetuated not by writing and print but through oral tradition."
- Standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend, Vol. 11, P. 1032.

''आदिकालीन स्वतःस्फूर्त संगीत को लोकगीत कहा गया है ।''[१] (एनसाइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका)

'' अज्ञात कलाकार द्वारा रचित एवं मौखिक परम्परा से सम्प्रेषित संगीत ही लोकगीत है ।''[२] (कोलम्बिया एनसाइक्लोपीडिया)

'' लोकगीत वह सम्पूर्ण गेय गीत है, जिसकी रचना प्राचीन अपढ़ जन में अज्ञात रूप से हुई और यथेष्ट समय, अतः शताब्दियों तक, प्रचलन में रहा ।''[३] (ए०एच०क्रेपी)

'' ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं । इनमें अलंकार नहीं केवल रस है । छन्द नहीं केवल लय है । लालित्य नहीं केवल माधुर्य है ।''[४] (रामनरेश त्रिपाठी)

'' आदिम मनुष्य के गानों का नाम लोकगीत है । मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके समस्त सुख दुःख की - कहानी-इन में चित्रित है ।''[५] (सूर्यकरण पारीक : नरोत्तम स्वामी)

'' लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वे व्यक्त भी रखते हैं । वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं । लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है, किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं इसकी सम्भावनाएं सामान्यता कुछ अधिक रहती हैं ।''[६] (बाबू गुलाबराय)

---

१. Primitive spontanous music has been called Folksong.
- Encyclopaedia Britanica, Vol. IX, P. 447.

२. "Folksong: Music of anonymous composition, transmitted orally." - Columbia Encyclopaedia, P. 737.

३. "The folksong is a song i.e. lyric with melody, which originated anonymously among unlettered folk in times, past and which remained in currency for considerable time, as a rule for centuries."
- The Science of Folklore, P. 135.

४. कविता कौमुदी - ग्रामगीत; भाग १(प्रयाग,संवत् १६८६) पृ० १, २ ।

५. राजस्थान के लोकगीत ; (राजस्थान; १६५६) प्रस्तावना ।

६. काव्य के रूप, (प्रयाग) पृ० १२३ ।

`` लोकगीत विद्या देवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानों अकृत्रिम निःसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं । सहजानन्द से सच्चिदानन्द में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाएं हैं ।``[१] (सदाशिव कृष्ण फड़के)

`` लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं ।``[२] (देवेन्द्र सत्यार्थी)

`` लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गती है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन प्रधान होते हैं ।``[३] (शान्ति अवस्थी)

`` लोकगीत उन लोगों के जीवन की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति है, जो अधिकतर आदिम अवस्था में रहते हैं ।``[४] (कुंजबिहारी दास)

`` वे गीत जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोक-मानसाभास भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा ।``[५] (सत्येन्द्र)

लोक गीतों के स्वरूप एवं परिभाषा सम्बन्धी उपर्युक्त विभिन्न मतों के अवलोकन उपरान्त निम्न सामान्य लक्षण एवं विशेषताएं उपलब्ध होती हैं, जिनके आधार पर लोक गीतों की एक साधारण; सहज तथा वैज्ञानिक परिभाषा देने का यत्न किया जा सकता है । यथा -

१. लोक गीत संगीतात्मक रचनाएं होती हैं ।

२. लोकगीतों में लोक-मानस की सहज एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति रहती हैं ।

३. लोकगीत मौखिक - परम्परा में अविरत रहते हैं ।

---

१. सम्मेलन पत्रिका: ``लोक संस्कृति अंक``, (प्रयाग, संवत् २०१०) पृ० २५०, ५१ ।

२. आजकल (दिल्ली, नवम्बर, १९५१) संख्या ७ ।

३. सम्मेलन पत्रिका: ``लोक संस्कृति अंक``, पृ० ३७ ।

४. "A folksong is a spontanous out-flow of life of the people who live in a more or less primitive condition."

- A Study of Orisson Folklore, (Patna 1950) P. I.

५. लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३९० ।

४. लोक गीतों के रचयिता प्राय: अज्ञात होते हैं ।

५. लोक गीतों में प्राय: लय का प्राधान्य रहता है ।

६. लोक गीतों में प्राचीन मानव सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र अंकित रहते हैं ।

`` लोकगीत ``, `लोक` तथा `गीत` शब्दों के संयोग से बना हैं, जिसका अर्थ हैं ``लोक के गीत`` । `लोक` शब्द वास्तव में अंग्रेजी के `फोक` का पर्याय है, जो नगर तथा ग्राम की समस्त साधारण जनता का द्योतक है ।[१] इसी प्रकार ``गीत`` शब्द का अर्थ प्राय: उस कृति से हैं, जो गेय हों ।[२] लोकगीतों में गेयता का होना आवश्यक हैं । संगीत एवं लय उसका प्राण हैं, अत: इसी कारण लोक गीत को ``स्वत: स्फूर्त संगीत`` कहा गया है । आदिम लोकमानस के लिये ``काव्य`` का सर्वोत्तम लक्षण इसका संगीत तत्व अथवा गेयतात्मकता थी । संगीतहीन काव्य मुक्तछन्द अथवा लयहीनता, उसके लिये प्रत्यक्ष असंगतियां थी ।[३] यद्यपि बिना कविता के संगीत का भी अधिक प्रचलन था, परन्तु ऐसी स्थिति में गीत के विषय अथवा उसमें अंकित चित्र से अधिक उसकी ध्वनि एवं संगीत ही प्राय: साधारण

---

१. (क) `लोक` शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगर व ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथियां नहीं हैं । ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं ।``
- हजारी प्रसाद द्विवेदी-`जनपद`, वर्ष १, अंक १, पृ० ६५ ।

(ख) `लोक` मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य हैं, जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता हैं ।``
- हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ६८६ ।

२. Columbia Encyclopaedia, P. 1262.

३. "To the primitive understanding "free-rhymes" and "free-verse" are patent absurdities, and poetry without music is fatal amputation."
- Literature Among the Primitives, P. 37.

लोक के मनोरंजन का विषय बनता था ।[१] वस्तुत: आदिम मानव के लिए कविता एक गेयात्मक कला थी ।[२]

लोकगीतों में लोकमानस की अभिव्यक्ति का होना अनिवार्य है और यह इनकी प्रामाणिकता का एक विशेष गुण भी है । यही कारण है कि लोक गीतों में प्राय: व्यक्तित्वहीन सत्ता प्रधान रहती है और गीत का व्यक्तित्व समस्त लोक का व्यक्तित्व बन जाता है । रचयिता के मनोभाव समस्त लोक के मनोभाव बन जाते हैं और उसकी अभिव्यक्ति समस्त लोक की अभिव्यक्ति होती है । वस्तुत: `` लोकगीतों को किसी ऐसे व्यक्तित्व से संबंधित नहीं किया जा सकता, जिसकी मेधा लोकमानस की मेधा न हो ।``[३] अत: स्पष्ट है कि लोकमानस साधारण जन समुदाय के विचारों एवं सहज भावनाओं का द्योतक है । लोकगीतों में अभिव्यक्त भाव, शास्त्रीयता अथवा पाण्डित्य की चेतना से मुक्त, साधारण कोटि के होते हैं । बहुधा ऐसा भी होता है कि गीत नितान्त आवेगात्मक तथा भावुक बन जाता है; परन्तु फिर भी भाव सर्वदा सामान्य एवं सहज होते हैं ।[४] रचना चाहे साहित्यिक हो अथवा लोक की शास्त्रीयता से प्रतिबद्ध हो अथवा मुक्त, उसकी सम्प्रेषणीयता का प्रधान तत्व रस होता है, जिसकी प्रधानता लोक गीतों के एक एक शब्द में विद्यमान है । पं० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में,`` (लोकगीत) ग्रामगीत हृदय का धन है, महाकाव्य मस्तिष्क का । ग्रामगीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार । रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित ।[५]``

---

१. "Though music without poetry is frequent, since basis of rural enjoyment." -- Ibid.

२. ---- Ibid.

३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ पृ० ६८६ ।

४. "The folksong is highly emotional, sometimes even sentimental, but the emotions are simple.
-- The Science of Folklore, P. 156.

५. कविता कौमुदी - ग्रामगीत, भाग ५ (प्रस्तावना) पृ० १, २ ।

लोकगीत मौखिक परम्परा में जीवित होते हैं । लोक साहित्य के अन्य अंगों की भाँति इनका संवहन मौखिकता से ही होता है । इसीलिए लोकगीतों का रूप प्राय: अस्थिर रहता है । अत: प्रक्षेपण एवं परिवर्धन की रूढ परम्परा तीव्र रहती है । फलस्वरूप गीतों के मूल स्त्रोतों की श्रेयता प्राय: अस्पष्ट रहती है और रचयिता के चिन्ह मात्र तक नहीं मिलते । परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि लोकगीतों की उत्पत्ति ``सामूहिक रीति`` से हुई है । लोकगीतों के रचयिता अज्ञात इस कारण है कि हम उन्हें खोज निकालने में असमर्थ है[१] क्योंकि अधिकांश संदर्भों में उन्होंने अपने नाम रचनाओं के साथ नहीं जोड़े और कहीं कहीं यद्यपि जोड भी दिए हों, तो वे लिपिबद्ध न होने के कारण काल के प्रवाह में लुप्त हुए हैं । इसी कारण किसी गीत के रचयिता के अज्ञात होने के आधार पर ही उसे लोकगीत की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती है । जैसा कि स्पष्ट है, इंगलैण्ड के राष्ट्रीयगान का रचयिता अज्ञात है परन्तु कोई भी उसे लोकगीत स्वीकार नहीं करता ।[२]

लोकगीत को प्राय: ``लयप्रधान गीत`` कहकर एक सीमित परिभाषा में बांधने का प्रयत्न भी किया गया हैं, जो वास्तव में भ्रामक है । यह सत्य है; लोकगीतों में प्राय: लय की प्रधानता रहती हैं, परन्तु लयप्रधानता ही एक लोकगीत की परिभाषा नहीं हो सकती । लोकगीतों में प्राय: लय से शब्द किंचित गौण इसलिए मिलते हैं कि मौखिक परम्परा में रहने के कारण, एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक गुजरने से, गीत के शब्दों को कई प्रकार के विकारों से गुजरना पड़ता है । अत: इसी प्रक्रिया में शब्द घिसते घिसते विकृत हो जाते हैं । संगीत क्योंकि आवेगपूर्ण होने के कारण, गीत का एक विशेष अंग होता है, इसलिए लोक गायक इसी पर अधिक बल देता है । फलस्वरूप गीत के शब्दों

---

१. Russian Folklore, P.10.

२. "Mere anonymity however does not suffice to turn a popular song into a folksong As it is well known, the English national anthem is quiet anonymous, yet no one would classit as folksong." -

- The Science of Folklore, P. 154.

से अधिक इसका संगीत तत्व अधिक निखरता है ।[१] वस्तुत: लयप्रधानता लोकगीतों की जन्मजात प्रवृत्ति नहीं, वरन् एक आरोपित लक्षण है ।

लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र, इतिहास से भी अधिक सूक्ष्म रूप में अंकित रहते हैं । किसी जाति के विश्वास, धार्मिक विचार, साधारण प्रथाएं, एवं विचार स्त्रोतों का संगम स्थल लोकगीत होते हैं । संस्कार, रीतिरिवाज, परम्पराएं एवं प्रथाएं आदि जिनका प्रचलन अब प्राय: समाप्त हो चुका है, लोकगीतों में सुरक्षित रहती हैं । वस्तुत: लोकगीत निस्सन्देह आदिम मानव समाज के ऐतिहासिक महत्व एवं सांस्कृतिक गौरव के सजग प्रहरी हैं । इनमें विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य तथा व्यापक भावों का रसपूर्ण उभार है । ये निस्सन्देह हमारी संस्कृति के `` मुँह - बोलते चित्र `` हैं ।

वस्तुत: लोकगीत, अज्ञात व्यक्तियों द्वारा की हुई, साधारण लोक के सहज एवं सरल मनोभावों तथा विचारों की साधारण संगीतात्मक मौखिक अभिव्यक्ति है ।

(४) <u>लोकगीतों का विकास</u>

भारतीय लोकगीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । सृष्टि के आरम्भ से ही भारतीय लोकगीत अविरत चले आ रहे हैं । गीत हो अथवा गाथा, कहावत हो अथवा पहेली, इनके मूल वैदिक, पौराणिक, अथवा बौद्ध - जैन साहित्य में अवश्य मिलते हैं । यद्यपि निश्चित रूप से लोक साहित्य

---

१. "In all Folksongs it is a common thing to find that words are inferior to the tunes and because of this it is often stated that it was tune which mattered most. This belief is very far from accurate. The truth is that in their passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification. The music is remembered more faithfully, because to the folk singer the whole "meaning " of the song is emotional rather than logical."

- Kenneth Richmond- Poetry and the People (London) P. 104

की प्रत्येक रचना का समरूप ढूंढना कठिन है, तथापि उनके बीज उपर्युक्त प्राचीन साहित्यिक स्त्रोतों में सुरक्षित मिलते हैं। ''[१]

संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। वैदिक युग में लोकगीतों का स्वरूप कैसा रहा होगा, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। परन्तु फिर भी वैदिककालीन साहित्य में, संकेत रूप में, हमें शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों के लिए प्रयुक्त ''गाथा'' शब्द की उपलब्धि होती है।[२] तब ''गाथा'' शब्द स्पष्टत: गीत के लिए[३] और ''गाथिन'' गाने वाले के लिए[४] प्रयुक्त होता था। वैदिककालीन साहित्य में गाथाओं का अत्यधिक प्रचलन रहा है। ऋग्वेद में इसका छन्द एवं मन्त्र, दोनों रूपों में प्रयोग हुआ है।

सायण भाष्य में विवाह संस्कार के विभिन्न कृत्यों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को '' रैभी '' तथा ''नाराशंसी '' गाथा के नाम से अभिहित किया गया है।[५]

---

१. "......though we are yet unable to find an exact duplicate of every piece of folklore, we surely find the seed in some of the ancient literature sources."
- An outline of Indian Folklore, P. 2.

२. अग्निमाष्टिदेवसे गाथाभि: ।शीरशोचिषम--।।-ऋग्वेद ८-७१-८ ।

3. "The word Gatha, which means a song or a ballad is of prevedic origin and very significant in Avestan literature as well in India, the word is used even today. The Gathas are said to be devine as well as human --- They are also called the Narasamsi, viz, the praise songs of man --- Gathas are found in Pali, and in Jain Literature and also in Prakrit Poetry."
- An outline of Indian Folklore, P. 14.

४. इन्द्रमिद गाथिनो वृहत ---।। - ऋग्वेद : १-७-१ ।

५. रैभ्यासीदनुदेयी, नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथायैति परिष्कृताम् ।।
- ऋग्वेद १०-७५-६ ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ''गाथाओं'' का वर्णन मिलता है । इनमें गाथाओं को ''ऋक्'', ''यजु'' आदि रूपों से पृथक माना गया है । वस्तुत: किसी राजा के सत्कृत्य का वर्णन करने वाले गीतों को ही गाथा कहा जाता था । विशेषकर अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्रों का रोचक वर्णन इस प्रकार की गाथाओं में अंकित हुआ है । ऐसी गाथाओं का स्वरूप लोकगीतों जैसा ही हुआ करता था । उदाहरण के लिये, एक '' गाथा '' में दुष्यन्त - पुत्र ' भरत ' का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

हिरण्येन परीवृतानशुक्लान् कृष्णादत्तोमृगान,
मष्णारे भरतो ददाच्छतं बद्धानि सप्तेच ।
अष्टसप्तति वृतघ्ने बध्नात पंचपंचाशतेह्यान् ।
महाकर्म भारतेस्य न पूर्वे नापरेजना: ,
दिवं मर्त्यइवहस्ताभ्यांनोदाणु: पंचमानवा: ।।

ऐतरेय ब्राहमण में '' ऋक '' और '' गाथा '' का पार्थक्य स्पष्ट करते हुए गाथा को मानुषी बतलाया गया है ।[1] यास्क की ''निरुक्ति'' की व्याख्या करते हुए श्री दुर्गाचार्य ने भी गाथा का यही अर्थ प्रतिपादित किया है ।[2] पुराणों में ऐसी ही अनेक गाथाओं का वर्णन मिलता है, जिन का रूप-साम्य लोकगीतों से मिलता जुलता है । व्यास ने '' गाथा '' का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया है --

आख्यानैश्चा प्युपाख्यानै गाथाभि: ।
कल्पशुद्धिभि: पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारद: ।।
प्रख्यातो व्यासशिष्यों भत, सुतोवैरोमहर्षण: ।
पुराण संहिता तस्यै ददौ व्यासो महामति: ।।[3]

---

१. गाथाया ओमति वैदैवं तथेति मनुषं । -ऐतरेय ब्राह्मण : ७-१८ ।

२. सपुनरितिहास ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च, ऋक् प्रकारस्वकश्चित् गाथोमुच्यते । गाथाशंसति नाराशंसी: शंसतिइति, उक्त गाथानां कुर्वीतेति ।।
- निरुक्ति : (दुर्गाचार्य) ४-६ ।

३. विष्णु पुराण - ३-६ : १५-१६ ।

इसी प्रकार पारस्कर तथा अश्वलायन गृहसूत्रों में विवाह तथा सीमन्तोन्चन संस्कारों पर गाथा गाने का वर्णन मिलता है ।[१] श्रीमद् भागवत के दशम् स्कन्ध में भी कृष्ण - जन्म के अवसर पर, स्त्रियों द्वारा एकत्र होकर, मंगलगान गाने का उल्लेख है ।

पुराणों के अतिरिक्त कतिपय भारतीय महाकाव्यों में भी लोकगीतों की परम्परा के कई महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं । ``रामायण`` एवम् ``महाभारत`` दो ऐसे अद्वितीय प्राचीन ग्रन्थ है, जिन्होंने समस्त भारतीय जीवन को प्रभावित किया है । इन दोनों महाकाव्यों में भारतीय जीवन का वास्तविक मर्म दृष्टिगत है । कई विद्वानों का मत है कि आदिकवि बाल्मीकि ने रामायण की रचना तत्कालीन प्रचलित लोकगाथाओं के आधार पर ही की है ।[२] बाल्मीकि रामायण में, रामजन्म के अवसर पर गान्धर्वों द्वारा गाने तथा अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का वर्णन मिलता है ।[३] इसी प्रकार महाकवि कालिदास के अमर काव्य में भी, यत्र तत्र, लोकगीतों के तत्कालीन स्वरूप आदि सम्बन्धी कुछ विशेष तत्व परिलक्षित होते हैं । `` रघुवंश `` में रघु - जन्म के समय राजा दिलीप के भवन में वैश्याओं द्वारा नृत्य करने तथा मंगल वाद्य बजाने का उल्लेख हुआ है ।[४] इसके अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी की एक प्रसिद्ध कवयित्री `` विज्जका `` ने भी चक्की पीसते, धान कूटते, तथा खेती निहारते समय स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले

---

१. यात्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायायस्याग्रत: ।
यस्यां भूतं समभवद्, यस्यां विश्वमिदं जगत ।।
तामध्य गाथां गास्यामि यास्त्रीणायत्तमयंश इति ।।
- पारस्कर गृह्यसूत्र: - १-७ ।

२. Winternitz: A History of Indian Literature, Vol. I P. 311.

३. जगु: कुलं च गान्धर्वा: न नृतश्चाप्सरोगणा: ।
देवदुन्दुभयो नेदु: पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ।।
- बाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड), जी. एच. भट्ट द्वारा सटीक पृ० १२२ ।

४. सुखश्रवा: मंगलतूर्यनिस्वाना: ।
प्रमोदनृत्यै: सहवारयोषिताम ।।
न केवल सधनि मागधीपते: ।
पथि व्यजम्यन्त दिवौकसामन्दि ।। - रघुवंश : ३-१९ ।

समूह गानों का वर्णन किया है ।[१]

संस्कृत, प्राचीन भारत के एक विशिष्ट वर्ग की भाषा थी । लोकगीत, जैसा कि स्पष्ट है, जनवाणी में जीवित रहते हैं । अत: संस्कृत साहित्य में लोकगीतों के प्राचीन अस्तित्व के संकेत मात्र ही प्राप्त होते हैं । `` लोकगीतों की अजस्त्र धारा को हमें संस्कृत के कूप-जल में नहीं, अपितु जन-जीवन को तरंगित करने वाली जन-भाषा में खोजना पड़ेगा ।[२] वास्तव में लोकगीतों का वास्तविक स्वरूप संस्कृत से अधिक पाली, प्राकृत आदि जन भाषाओं में ही अधिक निखरा है । विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी की प्राकृत भाषा एवं साहित्य में लोकगीतों का प्रचलन था । प्राकृत भाषा में शालिवाहन द्वारा सम्पादित `` गाथा सप्तशती `` से ज्ञात होता है कि उस समय लोक काव्य के सृजन एवं गाने की रूचि अत्यंत तीव्र थी ।`` गाथा सप्तशती `` में सात सौ गाथाएं संग्रहीत है ।[३] प्रत्येक गीत (गाथा) जन-सामान्य के जीवन के प्रत्येक पक्ष पर स्वाभाविक रूप से प्रकाश डालता है । यथा एक `` गाथा`` में किसी वियोगिनी की विकलता का सजीव चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है -

अजजं गओ त्ति, अजजं गओ त्ति, अजजं गओ त्ति ।
पढ़य विवअदिअहद्दे कुंडों रेहाहिं च्चित्तिओं ।।[४]

भगवान बुद्ध से सम्बन्धित कथाओं एवं गाथाओं का संकलन `` जातक `` ग्रन्थों में हुआ है । इनमें कथाओं के साथ साथ गेय गीतों का भी प्रयोग हुआ है, जो वास्तव में लोकगीतों के ही प्राचीन रूप हैं । अत: इनका प्रचलन आज भी काश्मीरी, भोजपुरी एवं अन्य भाषाओं की लोक कथाओं में देखा जा सकता है ।

---

१. विलासमणोल्लासान्मलस लोलदो: कन्दली ।
परस्परपरिस्खल दवलयानि: स्वनो दैबन्धरा: ।।
लसन्ति कलहड: कृति प्रसमकम्पिरोर: स्थल -
कृदगमक संकुलहा कलभगाड़नी गीतय: ।।

२. श्रीचिन्तामणि उपाध्याय: मालवी लोकगीत - एक विवेचनात्मक अध्ययन पृ० २१

३. भोजपुरी लोकगाथा, पृ० २०, २१

४. दे० - गाथासप्तशती ३-८ ।

अपभ्रंश काल में लोकगीतों का स्वरूप एवं उनकी लोकप्रियता, वैदिक-काल से अधिक विकसित जान पड़ती है । ऐसा आचार्य हेमचन्द्र कृत ``काव्यानुशासन`` में संकलित तत्कालीन प्रचलित लोकगीतों के कुछ उच्चतम् उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है । डॉ० सत्यव्रत सिन्हा का यह मत है कि ``अपभ्रंशकाल में लोकतत्वों एवं लोक-जीवन को स्पर्श करता हुआ ग्रन्थ सदेंशरासक है``;[१] अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त बौद्ध-सिद्धों की अनेक रचनाओं में भी तत्कालीन लोक-साहित्य के विभिन्न विकसित रूप दृष्टिगत होते हैं । सिद्धों के प्राचीनतम् ज्ञात कवि ``सरह`` की रचनाओं में भी लोकगीतों के प्रारम्भिक स्वरूपों के विषय में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त होती हैं ।

हिन्दी के आदिकाल में अपभ्रंश से चली हुई `` रासक `` की परम्परा में ही `` रासो`` का जन्म हुआ ।[२] `` काव्यानुशासन `` में हेमचन्द्र ने `` रासक `` को एक साहित्यिक गेय रास माना है ।[३] इसका आधार प्राय: लोक-गाथाएं हुआ करती थीं, जिसका उदाहरण नरपति नाल्ह की लोक-तत्वों से पूर्ण रचना `` बीसलदेव रास `` में भी मिलता हैं ।

हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में लोकगीतों का वास्तविक स्वरूप निखरा हुआ परिलक्षित होता हैं । यदि इस काल के साहित्य को, लोक साहित्य का ही विकसित रूप कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । ``सदेश रासक``, `` ढोला मारु रा दूहा``, `` परमार रासो ``, आल्हा, आदि रचनाएं, सभी इस बात के सशक्त प्रमाण हैं कि आदिकालीन हिन्दी साहित्य, मूलत: लोकगाथाओं, लोक कथाओं, एवं लोकगीतों की दृढ़ नींव पर अवलम्बित हे । इनके मौखिक रूप आज भी जीवित हैं । कई `` रासो `` तो मात्र गाने के ध्येय से ही रचे गए थे ।

इसी प्रकार मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में भी पर्याप्त लोकतत्व हैं । तुलसी, सूर, कबीर तथा जायसी की रचनाओं में तो लोकतत्वों का भण्डार भरा हुआ है । जायसी के सूफी धर्म के प्रचार का मूलाधार भारतीय लोक कथाएं एवं गाथायें थीं । इसी प्रकार तुलसी ने भी तत्कालीन प्रचलित लोकसाहित्य के आश्रय

---

१. भोजपुरी लोकगाथा, पृ० २१ ।

२. भोजपुरी लोकगाथा, पृ० २१ ।
3 वही , ,, ,,

द्वारा अपने अमर काव्य का प्रणयन किया । इस दृष्टि से तुलसी ``जानकी मंगल`` तथा `` पार्वती मंगल `` तो प्रसिद्ध है ही, परन्तु `` रामचरितमानस `` में भी तत्कालीन लोकगीतों का वर्णन है । इसी प्रकार सूरदास ने भी कृष्ण काव्य की रचना में कई लोक छन्दों को ग्रहण किया है । वस्तुत: भारतीय लोकगीतों की टूटी परम्परा का अखण्ड रूप मध्ययुगीन साहित्य में स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है ।

भारतीय लोकगीतों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितना आदिम मानव । यद्यपि मौखिक परम्परा में रहने के कारण इसका क्रमबद्ध रूप न रह सका, फिर भी, भारतीय साहित्य एवं इतिहास के प्रत्येक युग तथा प्रत्येक काल में लोकगीतों के अस्तित्व एवं स्वरूप के पर्याप्त लक्षण विद्यमान है । इस कथन का समर्थन विदेशी यात्रियों के संस्मरणों एवं यात्रा विवरणों से भी किया जा सकता है ।[१]

जैसा कि कहा गया है, लिखित साहित्य, एक विशेष शिक्षित वर्ग की बौद्धिक प्रतिभाओं एवं पाण्डित्य की चेतना के सफल प्रयत्नों से जीवित रहता है । परन्तु लोक-साहित्य जनमानस की सहज प्रतिभा से अनुप्राणित होकर, मौखिक परम्परा में ही प्रवाहमान रहता है । अत: लिपिबद्धता अथवा साहित्यिक रूप मिलने के अभाव में इसकी विशिष्ट परम्परा टूट जाना स्वभाविक ही है । इस टूटी हुई परम्परा को जोड़ना, लोक-साहित्य के विद्वानों के लिए आज एक कठिन कार्य बन गया है । इसका मूल कारण है कि लोकसाहित्य, विशेषकर भारत में, एक पिछड़ा हुआ विषय है । उसकी ओर विद्वानों का ध्यान वर्तमान शताब्दी में ही आकृष्ट हुआ है । आवश्यकता इस बात की है कि अनुसंधान एवं

१अ) ``सम्राट हर्षवर्धन के समय में ह्वेनसांग का आगमन हुआ था । उसने राज्य के उत्सवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । भारतीयों के लोकनृत्य एवं गान उन्हें बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुए । इससे स्पष्ट है कि उस समय लोकगीतों एवं लोकगाथाओं का प्रभाव बहुत ही व्यापक था ।``

- हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० २६

आ) `गुप्तकाल में फाह्यान ने भारत भ्रमण किया । अपने वृतान्त में वे एक स्थान पर उल्लेख करते हैं कि गुप्तकाल में नृत्य, संगीत, गीतों एवं गाथाओं का बहुत प्रचलन था । वे लिखते हैं कि उस समय --दुन्दुभी बजाते थे, नृत्य करते थे तथा भगवान बुद्ध की महिमा के गीत भी गाते थे ।`

- हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० २६

सफल अध्ययन द्वारा लोक साहित्य परम्परा की शृंखला की टूटी हुई कड़ियों को खोजा जाए ।

(५) लोकगीतों का वर्गीकरण

सम्पूर्ण संसृति में परिव्याप्त तथाकथित लोक-मानस की सुख-दुखमयी अनुभूतियों की सामूहिक भाव-भीनी गेय (संगीतमय) अभिव्यक्ति ही लोक-गीत है । लोक-गीतों के अति विस्तृत क्षेत्र में प्रकृति, पृथ्वी और निस्सीम व्योम तो क्या मानव मन की अनन्त कल्पनाएं भी समाविष्ट हैं । इनकी विषय-विशदता मानव-जीवन के समस्त पहलुओं को अपने में समाहित किये हुए है । नर और नारी के समस्त रूप (पुत्र, भाई, पति, पिता आदि; पुत्री, बहिन, बुआ, सहेली, ननद, पत्नी, देवरानी, जेठानी, बहू, सास, मां आदि) इन गीतों में निरूपित हैं । समाज के समग्र संगठन इनमें वर्णित हैं । कुटुम्ब की सारी बागडोर इन गीतों के हाथ में है । मर्यादाओं और उत्तरदायित्वों का बोध इन्हीं से संभव है । मानव का शैशव लोरी के बहाने यहीं सोता है, यौवन इन्हीं के माध्यम से प्रेमोन्माद में प्रमत्त रहता है और वार्धक्य जीवन-यात्रा से श्रान्त हो इन्हीं गीतों से मन बहलाया करता है । लोक-लीक को ये गीत ही सींचते हैं । धार्मिकता का प्रचार और प्रसार इन्हीं का उद्देश्य माना जाता है । कुप्रथाओं, अन्ध-विश्वासों आदि का उल्लेख भी ये गीत ही करते हैं और उनका विरोध भी ये ही करते हैं । लोक-गीत ही सामाजिक मान्यताओं का महान्-कोष हैं । ये विदग्ध-हृदय को सान्त्वना देते हैं, प्रताड़ित को संबल प्रदान करते हैं, पथ-भ्रष्ट का मार्ग-निर्देशन करते हैं, सांसारिकता के मोह-जाल में आबद्ध को सदुपदेश देते हैं, कर्म-रत की थकावट को दूर करते हैं । ये गीत मानव-जाति के जन्म जितने पुरातन और सद्यः प्रसूत शिशु जितने नूतन हैं । इन गीतों में मानव-संस्कृति का सांगोपांग चित्रण एवं व्यापक-भावों का उभार देखने को मिलता है । इन गीतों में अभिव्यक्त भाव शाश्वत जीवन के शाश्वत संदेश हैं । इन्हीं गीतों में हृदय का सारल्य अभिव्यक्त है तो दूसरी तरफ इन्हीं गीतों में मनोमालिन्य भी वर्णित है । यहां आज्ञाकारिणी और पारिवारिक सदस्यों को ही अपने अमूल्य आभूषण स्वीकारने वाली वधुएं मिलेंगी तो दूसरी ओर सास के नाक में दम करने वाली वधुएं भी मिल जाएंगी ।

यशोदा और कौशल्या जैसी साध्वी सास के दर्शन भी यहीं होंगे और आसुरी-वृत्ति प्रधान अपनी बहू को अकारण ही सताने वाली सास भी यहीं मिलेगी। कपूत और सपूत के निर्णय की कसौटी भी लोक-गीत ही हैं। अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली भावज से कलह करती ननद यहीं दिखाई देगी तो भावज के मना करने के उपरान्त भी नाई द्वारा, ननद को अपमानित करने की हेय भावना से प्रेरित हो, दी जाने वाली जली घुघरी (गेहूँ और चने के उबाले हुए दाने) के बदले लोक-लाज का ध्यान कर ''सोने-रूपे'' की घुघरी भावज को वापस करने वाली ननद भी यहीं मिलेगी। देश का सांस्कृतिक चित्रण इन्हीं गीतों में हुआ है, ऐतिह्य-वृत्तों ने परोक्ष वा प्रत्यक्ष रूप से यहीं यथार्थ स्वरूप ग्रहण किया है और नैतिक प्रतिमान तथा सामाजिक आदर्श भी इन्हीं गीतों के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी प्रस्थापित एवं हस्तांतरित किये गये हैं। लाला लाजपतराय के शब्दों में लोक-गीतों की महत्ता द्रष्टव्य है -

> 'देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।'[१]

लोक-गीतों में भावों का अशेष भंडार भरा पड़ा है। जीवन के कठोर और कोमल तत्वों ने यहीं आश्रय पाया है। प्रतिपल परिवर्तित जीवन का प्रत्येक चित्र इन गीतों में चित्रित है। मानव-मन के समस्त भाव एवं विचार यहां शब्द-बद्ध हैं। मनोविज्ञान लोक-गीतों में भरा पड़ा है। इन गीतों में प्रबंध-काव्य जैसी जीवन की विशद व्याख्या है। मुक्तक-काव्य का वैशिष्ट्य निरूपित करने वाली उक्ति (गागर में सागर भर देना) लोक-गीतों के लिए सार्थक प्रतीत होती हैं।

लोक-गीतों के महत्व को लेकर बहुत से पाश्चात्य और पौर्वात्य मनीषियों ने बहुत कुछ कहा है। इसी प्रकार इन गीतों की प्राचीनता, इनके निर्माण-कर्ताओं एवं इनके उद्भव के बारे में भी पर्याप्त चर्चाएं हुई हैं। अतः हम

---

१. कविता-कौमुदी, भाग ५, पृ० ७७, रामनरेश त्रिपाठी, (लाला लाजपतराय के पत्र से उद्धृत)

इन सभी प्रश्नों को विषयेतर समझ अपने शोध के विषय को दृष्टिगत रखते हुए लोक-गीतों के वर्गीकरण पर आते हैं। लोक-गीतों के वर्गीकरण की क्या आवश्यकता है ? प्रसिद्ध विद्वानों ने लोक-गीतों को किस प्रकार से वर्गीकृत किया है ? क्या उन वर्गीकरणों के आधार पर राजस्थानी लोक-गीतों को वर्गीकृत किया जा सकता है ? और नहीं तो राजस्थानी लोक-गीतों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है ? आदि अनेक प्रश्नों पर यहां विचार किया जाएगा।

किसी भी प्रस्तुत विपुल सामग्री में भाव, रूप, वर्ण्य-विषय आदि से संबंधित पारस्परिक साम्य को आधारभूत मानते हुए उस समस्त सामग्री को विभिन्न खण्डों-उपखण्डों में विभक्त करना ही वर्गीकरण कहलाता है। यहां पर हम लोक-गीतों की बात को लेंगे। वस्तुत: वर्गीकरण ही सैद्धांतिक विवेचन कहलाता है। किसी भी विषय को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उसके वर्गीकृत विभागों को क्रमश: ग्रहण करें। उपयुक्त एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण वही स्वीकार्य होगा जिसकी वर्गीकृत सामग्री अपने वर्ग-विशेष से ही पूर्णांशत संबद्ध हो। वह अन्य वर्गों में कथमपि प्रवेश न करे। यदि विभागों में इस प्रकार का अन्तर्संबंध उत्पन्न हो भी तो कम से कम सीमा में ही रहे।

लोक-गीतों को आज तक अनेकानेक विद्वानों ने नाना-विध एवं कई आधारों पर वर्गीकृत किया है। उन विद्वानों में से कई विद्वान ऐसे भी हैं, जिन्होंने राजस्थानी लोक-गीतों को ही दृष्टि में रखकर वर्गीकरण किया है। परंतु इन सभी वर्गीकरणों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन सभी वर्गीकरणों में कुछ न कुछ त्रुटि रह गई है। कई वर्गीकरणों में तो वर्गीकृत विभागों में अन्तर्सम्बन्ध अत्यधिक मात्रा में मिलता है। बड़ी सहजता से उन विभागों को मिलाकर एक विभाग में ही रखा जा सकता है। कई वर्गीकरणों में जानबूझ कर विभागों की संख्या में वृद्धि की गई है। कुछ वर्गीकरणों में विभागों का ऐसा नामकरण किया गया है कि उससे उस वर्ग-विशेष की सामग्री का पूर्णत: बोध नहीं हो सकता। इन वर्गीकरणों में कुछ वर्गीकरण ऐसे भी हैं जो किसी भाषा-विशेष के लोक-गीतों को वर्गीकृत करने में भले ही महत्वपूर्ण हों, परंतु राजस्थानी लोक-गीतों के संदर्भ में उतने खरे नहीं उतरते। क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि एक प्रदेश के लोक-गीतों का

वर्गीकरण दूसरे प्रदेश के लोक-गीतों के वर्गीकरण के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण सिद्ध हो । मानव-संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति के धरातल पर तो अनेक लोक-गीतों में साम्य मिलता है पर विभिन्न प्रदेशों के लोक-गीतों पर प्रादेशिक संस्कृति की भी अमिट छाप होती है । फलत: प्रत्येक प्रदेश के लोक-गीतों का अपना अलग एक विशेष प्रकार का वर्गीकरण संभव है । यहां पर हम सर्वप्रथम अनेक प्रसिद्ध मनीषियों द्वारा किये गये वर्गीकरणों का उल्लेख करेंगे, ताकि उनकी तुलना में हमारा वर्गीकरण उपयुक्त एवं वैज्ञानिक सिद्ध हो सके । हम अपने द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले वर्गीकरण के लिए कुछ कहने से पूर्व अन्य वर्गीकरणों का उल्लेख कर रहे हैं । पहले हिन्दी के कुछ विद्वानों के वर्गीकरण प्रस्तुत हैं ।

(१) पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत

(१) संस्कार-संबंधी
(२) चक्की और चरखे के गीत
(३) धर्म-गीत-त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीत, भजन
(४) ऋतु-सम्बन्धी- सावन, फागुन और चैत्र के
(५) खेती के गीत
(६) भिखमंगों के गीत
(७) मेले के गीत
(८) भिन्न-भिन्न जातियों के गीत
(९) वीर-गाथा - (आल्हा, लोरिक, ढोलामारू आदि) ।
(१०) गीत-कथा - (छोटी छोटी कहानियां जो गाकर कही जाती है)
(११) अनुभव के वचन- जिन्हें घाघ भड्डरी आदि श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ।[१]

---

१. कविता- कौमुदी, पृ०४५ भाग ५, रामनरेश त्रिपाठी

(२) डॉ० सत्येन्द्र-कृत -

(१) अनुष्ठान-आचार-संबंधी

(२) मनोरंजन संबंधी ।[१]

(३) डॉ० श्याम परमार कृत -

(१) संस्कार-विषयक

(२) धार्मिक-गीत

(३) माहवारी गीत

(४) ऐतिहासिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक गीत

(५) बच्चों के गीत

(६) विविध गीत (गृहस्थी के गीत, हास्य-गीत, अन्य गीत)

(७) बंध-गीत - धार्मिक, ऐतिहासिक ।[२]

(४) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय कृत -

(१) संस्कारों की दृष्टि से

(२) ऋतु-संबंधी गीत

(३) व्रत-संबंधी गीत

(४) जाति-संबंधी गीत

(५) श्रम-संबंधी गीत

(६) विविध गीत- झूमर, अलचारी, पूरबी, निर्गुन, भजन, पालना, खेल ।[३]

(५) डॉ० शंकरलाल यादव कृत -

(१) लघु-गीत

(२) प्रबन्ध-गीत ।[४]

---

(१) ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन पृ० ११८

(२) भारतीय लोक-साहित्य, पृ० ६६

(३) हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास (१६ वां भाग) पृ० ५६

(४) हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य

(६) भास्कर रामचन्द्र भालेराव कृत -

(१) संस्कार-विषयक (२६ अन्य प्रकार माने-जिसमें साँप काटने पर गाये जाने वाले एवं मेले के गीत भी परिगणित किये)

(२) माहवारी गीत (२२ अन्य प्रकार माने)

(३) सामाजिक-ऐतिहासिक (२५ अन्य प्रकार माने)

(४) विविध - (१५ प्रकार माने- खेती की कहावतें, दोहे-साखी, सोरठे, सवैये, कवित्त परिगणित किये) ।

(७) आचार्य शिव पूजन सहाय कृत -

(१) गाथा-गीत

(२) ऋतु-गीत

(३) संस्कार-गीत

(४) व्यवसाय-गीत

(५) व्रतोत्सव या पर्व-गीत

(६) भजन या श्रुति-गीत

(७) लीला-गीत

(८) बिरहा

(९) जोग,टोना और मान के गीत

(१०) विशिष्ट गीत (पिरिया के गीत, पानी माँगने के गीत)

(११) लोरियाँ

(१२) बाल-क्रीड़ा-गीत ।

(८) डॉ० सत्या गुप्त कृत -

(१) आनुष्ठानिक गीत

(२) लोक-गीतों में ऋतु-वर्णन (ऋतु-गीत)

(३) श्रम-गीत (खड़ी बोली के लोक-गीतों में स्त्री-पुरुषों के विशेष तथा विभिन्न क्रिया-कलापों का उल्लेख)

(४) बाल-गीत ।[1]

---

१. खड़ी बोली का लोक-साहित्य, पृ० ३१

(६) डॉ० गोविन्द चातक -

(१) धार्मिक-गीत

(२) संस्कार के गीत

(३) ऋतु-गीत

(४) नृत्य-गीत

(५) प्रणय-गीत

(६) विविध गीत (हास्य-व्यंग्य विषयक, सामयिक विषयों से संबंधित, बाल-गीत, श्रम-गीत, जातियों के गीत) ।

(७) लोक-गाथाएं ।[१]

अब उन विद्वानों के वर्गीकरण को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनके वर्गीकरण का आधार मूलत: राजस्थान लोक-गीत हैं ।

(१) पं० सूर्यकरण पारीक कृत -

(१) देवी देवता और पितरों के

(२) तीर्थों के

(३) संस्कारों के

(४) भाई बहिन के

(५) पति-पत्नी प्रेम के (संयोग-वियोग)

(६) प्रेम के

(७) बालिकाओं के

(८) प्रभाती-गीत

(९) धमालें

(१०) राजकीय गीत

(११) जम्मे के गीत

(१२) वीरों के एवं ऐतिहासिक गीत

---

१. गढ़वाली लोक-गीत: एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४१

(१३) पशु-पक्षी संबंधी

(१४) गांवों के गीत

(१५) ऋतुओं के गीत

(१६) व्रत उपवास और त्यौहारों के गीत

(१७) विवाह के गीत

(१८) साली-सालेलियों के गीत

(१९) पणिहारियों के गीत

(२०) चक्की पीसने के गीत

(२१) चरखे के गीत

(२२) हरजस

(२३) देश प्रेम के गीत

(२४) राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत

(२५) सिद्ध-फूकणों के गीत

(२६) ग्वालों के गीत व हास्य-रस के गीत

(२७) शांत-रस के गीत

(२८) नाट्य-गीत

(२९) विविध गीत ।

(२) डॉ० पुरुषोत्तम मैनारिया कृत -

(१) धार्मिक लोक-गीत

(अ) संस्कार-संबंधी

(आ) देवी-देवता संबंधी

(इ) व्रत-संबंधी

(२) मनोरंजनात्मक लोक-गीत

(अ) गणगौर के गीत

(आ) तीज के गीत

(इ) दीपावली के गीत

(ई) होली के गीत

(ऊ) शिकार के गीत ।[१]

(३) डॉ० नारायणसिंह भाटी कृत -

(१) ऋतु-गीत

(२) श्रम-गीत

(३) संस्कार-गीत

(४) धार्मिक गीत

(५) बाल-गीत

(६) कहावतें ।[२]

(४) सीताराम लालस कृत -

(१) संस्कार संबंधी गीत

१- पुत्र-जन्म

२- उपनयन-संस्कार

३- विवाह

४- गौना

(२) व्यवसाय संबंधी गीत

१- श्रम-गीत

२- जीविका-संबंधी गीत

(३) आवसरिक गीत-

१- ऋतु-संबंधी गीत

२- त्यौहार एवं पर्व-संबंधी गीत

३- देवी-देवताओं संबंधी गीत

४- व्रत-उपासना-संबंधी गीत

---

१. राजस्थान साहित्य का इतिहास - डॉ० मेनारिया, पृ०१५० से १८४ तक

२. हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास (१६ वां भाग) पृ० ४३६ (राजस्थानी लोक साहित्य)

(४) पारिवारिक गीत

(५) विविध गीत -

(१) ऐतिहासिक गीत

(२) बाल-गीत

(३) अन्य गीत ।[१]

(५) नानूराम संस्कर्ता कृत -

(१) संस्कार संबंधी - (जन्म, विवाह, (देवताओं के बनड़े, संवादात्मक गीत, पीठी के गीत, हल्दी के गीत, मृत्यु) ।

(२) अन्य गीत - (मौसमों के सामयिक गीत, देवी देवताओं एवं व्रत त्यौहारों के गीत, रातीजोगे के गीत, बालूड़ों (कथात्मक गीत), तपस्या-गीत, शील और साहस के गीत) ।[२]

उपर्युक्त समस्त वर्गीकरणों की अपनी-अपनी विशेषताएं भी हैं और कुछ कमियां भी हैं । इन वर्गीकरणों की आलोचना करना या खामियां बताना अप्रासंगिक प्रतीत होता है । विविध वर्गीकरणों का उल्लेख करने से पूर्व उक्त वर्गीकरणों पर सामूहिक टिप्पणी के रूप में कुछ अवश्य लिख दिया गया है । अत: इन सब बातों को विषयान्तर समझते हुए हम हमारा वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं । ताकि उक्त वर्गीकरणों की तुलना में हमारे वर्गीकरण को भली भांति समझा जा सकें ।

---

१. राजस्थानी शब्द-कोष (प्रथम भाग) पृ० २०७ से २२४ तक (भूमिका से)

२. राजस्थानी लोक-साहित्य, पृ० ७२ से प्रारंभ

51

मेरे विनम्र दृष्टिकोण से लोकगीतों का वर्गीकरण ` रसों ` के आधार पर होना चाहिए, क्योंकि काव्य का फिर चाहे वह लौकिक काव्य हो, मुख्य उद्देश्य पाठक को आनन्द प्रदान करना है और यही आनन्द भारतीय काव्य शास्त्र में ` रस ` के नाम से अभिहित किया गया है। इस दृष्टि से आज तक किसी ने विचार नहीं किया। हाँ, कुछ विद्वानों ने लोकगीतों के भेदों में करुण गीत, प्रेम गीत आदि भेद गिनाये हैं पर केवल रसों के आधार पर कोई वर्गीकरण नहीं किया गया। अतः रस ही लोकगीतों के वर्गीकरण का मुख्य आधार होना चाहिए। उक्त सभी वर्गीकरणों में यह कमी प्रतीत होती है कि एक प्रकार के गीत दूसरे प्रकार के गीतों में बड़ी सहजता से रखे जा सकते हैं, पर यदि वर्गीकरण रसों के आधार पर किया जाय तो एक गीत एक ही वर्ग में रखा जायेगा, उसे किसी हालत में दूसरे वर्ग में रखना संभव नहीं। इस तथ्य को मैं भी स्वीकार करती हूँ कि सभी रसों से संबंधित लोकगीत शायद न मिलें पर मुख्य मुख्य रसों से संबंधित गीत अवश्य ही मिल जाते हैं अतः मैं प्रमुख रसों के आधार पर ही वर्गीकरण करूंगी और विशेष रूप से अपने आलोच्य विषय ` शृंगारिक लोकगीत ` पर प्रकाश डालूंगी।

मेरा वर्गीकरण -

१- शृंगार विषयक लोकगीत
२- वीर रस विषयक लोकगीत
३- करुण रस विषयक लोकगीत
४- हास्य रस संबंधित लोकगीत
५- शान्त रस संबंधित लोकगीत

प्रमुख रूप से उक्त रसों से संबंधित लोकगीत राजस्थान प्रदेश में मिलते हैं। अन्य रसों के लोकगीत प्रायः देखने में नहीं आये अतएव मैंने उनके नाम से अलग वर्ग नहीं रखा।

(६) लोकगीतों की महत्ता -

विश्व की उन्नति, अवनति और उत्थान पतन के सहस्त्रों घात-प्रतिघातों को सहते हुए भी लोकगीत की सुरसरि आज भी जन-मानस में अपनी निजी महत्ता को संजोये हुए अजस्त्र रुप में प्रवाहित है, जो अब मात्र ग्रामीण और गंवार लोगों की धरोहर नहीं रही अपितु सभ्य एवं सुशिक्षित लोगों का भी कंठहार बन गई है । धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठानों का बिना लोकगीतों के सम्पन्न नही होना ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता एवं महत्ता है ।

लोकगीतों को गाने के साथ वाद्यों की भी संगत होती हे । पराधीनता के युग में हम कई वाद्यों को प्रयोग में न लाने से लुप्तप्राय: कर बैठे और ढोलक, तुम्बी चंग आदि की जगह पाश्चात्य वाद्यों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करने लगे । फलत: ये वाद्य लोकगीतों के शब्दों में वर्णित रहे जो आज निजी धरोहर के रुप में पुन: रेडियो स्टेशनों, चलचित्रों, संगीत समारोह में दृष्टिगत होने लगे हैं । इन वाद्यों को मृत एवं नामशेष होने से लोकगीतों ने ही बचाया है जिनकी सुरीली आवाज सुनने का श्रेय इन्हीं गीतों को हैं अन्यथा हम हमारे ही सुंदर वाद्यों से वंचित रह जाते ।

कोई भी गीत हो उसमें लय की प्रधानता रहती है और लय को व्यक्त करने में वाद्यों का बड़ा योग रहता है । लय की सुंदरता ही हृदयग्राही बनती है, और गीतों की लोकप्रियता एवं चिरकाल तक जीवित रहने की शक्ति लय एवं धुनों में ही निहित रहती है । सुंदर लय के कारण ही आम जनता की स्मृति पटल पर ये लोकगीत अपने हुबहू सौंदर्य के साथ विराजमान है जिसकी झलक चलचित्रों में देखने को मिलती हे । ये सुंदर लयें और धुने जो वर्तमान में भी लोगों को आकर्षित करती हैं यही उनका वैशिष्ट्य दिखाती है ।

आज अनेक भाषायें हैं, उनका साहित्य भी है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक भाषा का ज्ञान नहीं रखता, किन्तु लोक साहित्य से प्रचलित

साहित्य साधारण से साधारण जनता में अपनी यथावत् स्थिति में आज भी जीवित है । भाषा के कई शब्द काल-कवलित हो गये, जो किसी शब्दकोश, साहित्यकोश आदि में भी नहीं हैं । ऐसे शब्द जो निपट देहाती-ग्रामीण होते हुए भी अपनी समूची सत्ता एवं भाव-सौंदर्य सहित इन लोकगीतों में सन्निहित हैं । वे सभी शब्द आज भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने में सहायक हैं । इस तरह भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी लोकगीतों का बड़ा महत्व है ।

भारतीय संस्कृति मूलतः षोड्श संस्कारों पर आधृत है । दुर्दैव है कि आज लोग केवल तीन संस्कार - जन्म, विवाह और मृत्यु का ही अनुशीलन करते हैं । शेष सभी शनैः शनैः विलीनता के गर्त में जारहे हैं । सभी पाश्चात्य संस्कृति की ओर न्यूनाधिक आकर्षित हैं । न ही वेदारम्भ है और न ही समावर्तन संस्कार हैं । आज योग्य नेता या महापुरुष तो उत्पन्न होना दूर रहा योग्य नागरिक भी नहीं मिलता हैं । सर्वत्र भ्रष्टाचार का साम्राज्य है । इन लोकगीतों में सभी संस्कारों का वर्णन है जैसे 'मुंडन' का 'फडुला' 'उपनयन' का 'जनेऊ धारण' करने के रुप में विद्यमान हैं जिससे हमारे संस्कार मृत होने से बचे । इनकी महत्ता को श्री कोमल कोठारी ने स्वीकार करते हुए लिखा है - "निसंदेह हमारे इन 'सद्' संस्कारों के निर्माण में लोकगीतों ने अपना योगदान दिया है । ये लोकगीत हमारे लोक-मानस के अचेतन संस्कारों के निर्माता है ।[१]

परिवार को संगठित और मजबूत इकाई बनाये रखने में लोकगीतों का अपना महत्व, अपना योग और अपना उपयोग रहा है । पारिवारिक जटिल एवं गहनतम गुत्थियों को लोकगीतों ने अपने सहज एवं सरल ढंग से वर्णित किया है । यही कारण है कि कुटुम्ब एवं विवाह जैसी संस्थाओं का महत्व पाश्चात्य देशों की तुलना में भारत में अधिक है जिसे इन लोकगीतों ने ही अपने क्रोड में पालित रखा जो अपने आप में महत्वपूर्ण हैं ।

---

१. साहित्य संगीत और कला पृ० २६

इसी मत का समर्थन करते हुए उचित ही लिखा है - ``यदि हम लोकगीतों का अध्ययन परिवार के जटिल संबंधों के आधार पर करें, तो पता चलेगा कि वस्तुत: सामाजिक, नैतिक एवं वैधानिक मान्यताओं को लोकगीतों ने सरस और सहज भाव से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है । यही इन गीतों का प्रयोजन है, उद्देश्य है और महत्व है ।[१]``

कई ऐसे आदर्शपूर्ण व्यक्ति, जिनके चरित्र एवं व्यक्तित्व के पहलू इतने उज्जवल है किन्तु इतिहासकारों ने इतिहास में उनके प्रति उदासीनता एवं उपेक्षा ही बताई । ऐसे उपेक्षित पात्र एवं चरित्र लोकगीतों में बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित हैं जो इतिहासकारों का भी ध्यान आकृष्ट करते है अतएव लोकगीतों का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

सबसे महत्वपूर्ण बात लोकगीतों में यदि दृष्टिगोचर होती है तो वह है शुद्ध नैतिकता पूर्ण मनुष्य जीवन का चित्रण । इसीलिये कोमल कोठारी ने समीचीन ही लिखा है ``लोकगीतों ने मनुष्य की इस दुर्बलता से भी आंख नहीं मूंदी है । जंहा लोकगीतों ने जीवन को सकारात्मक तथ्यों से अलंकृत किया है, वंहा जीवन के इन नकारात्मक पक्षों को भी अवश्य चुना है ।[२]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लोकगीतों की महत्ता निम्न शब्दों में स्वीकार की है -

`` लोकगीतों की सहायता से हम पुराने संसार को प्राप्त कर लेंगे जिसे या तो हम भूल चुके हैं या जिसे गलत समझ बैठे हैं । --- आज भी हमारे जन-साधारण के रस्मरिवाजों में आर्यों से पहले की उस सभ्यता की कुछ न कुछ झलक पाई जाती है । प्राचीन लोकगीत- उस सभ्यता पर प्रकाश डाल सकते हैं । पुरातत्व विभाग वालों को यह बात बुरी न लगे तो मैं कहूंगा कि प्राचीन लोकगीतों का महत्व मोहनजोदड़ों सरीखे खंडहरों से कहीं अधिक है ।`` [३]

---

१. साहित्य संगीत और कला पृ० ३५ - ले. कोमल कोठारी
२. ,, वही ,, पृ० ३२ ,, ,,
३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (धरती गाती है) पृ० ५६

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में हुए पुरातात्विक उत्खनन-कार्यों और अनुसंधानों से प्रकट होता है कि वैदिक सभ्यता का प्रारम्भिक विकास राजस्थान में हुआ था तथा अधिकांश वैदिक साहित्य की रचना राजस्थान में ही हुई। वैदिककाल के अनेक ऋषियों के आश्रम राजस्थान में आज भी प्रसिद्ध है। वैदिककाल की प्रसिद्ध सरिता सरस्वती राजस्थान में ही प्रवाहित होती थी। वेद, पुराण और उपनिषदादि साहित्य ''विद्या कण्ठे'' नामक उक्ति के अनुसार ऋषि-परम्परा में मौखिक रूप से ही प्रचलित था। कालान्तर में विस्मृत होने के भय से ही यह लिपिबद्ध किया गया। उक्त साहित्य के लिपिबद्ध होने पर भी मौखिक रूप में गेय होने की परम्परा शताब्दियों तक हमारे देश में प्रचलित रही। मौखिक रूप में प्रचलित हमारा लोक-साहित्य और मुख्यत: हमारे लोकगीत प्राचीन साहित्य-परम्परा के ही प्रतीक है। इस साहित्य में समयानुसार अनेक परिवर्तन-परिवर्द्धन हो गये हैं किन्तु इनमें प्राचीन वैदिक तत्वों के अवशेष भी किसी न किसी रूप में अवश्य उपलब्ध हो जाते हैं। वैदिक देवता इन्द्र, वरुण, वायु, जल और प्रजापति आदि से सम्बन्धित अनेक वर्णन हमारे इन लोकगीतों में बिखरे हुए हैं। आधुनिक काल में प्रचलित हमारे धार्मिक एवं सामाजिक संस्कारों में अनेक लोकगीत अनिवार्य रूप में मन्त्रवत् गेय होते हैं। विषय और स्वर दोनों ही दृष्टियों से अनेक लोकगीतों की प्रतिष्ठा वैदिक परम्परा में हो सकती है।

राजस्थानी लोकगीतों के माध्यम से पूर्व वैदिककाल से आधुनिक काल तक के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों में हुए अनेक उथल-पुथल एवं परिवर्तन ज्ञात किये जा सकते हैं। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वैदिककाल के अनेक शब्द-प्रयोग राजस्थानी गीतों में ही अब सुरक्षित हैं। हमारा जातीय और सांस्कृतिक इतिहास इन लोकगीतों में ही रक्षित है। राजस्थानी लोक-गीतों के ऐसे महत्व को ध्यान में रखते हुए ही वेद-वीथि-पाथिक गुरुवर स्व० पं० मोतीलालजी शास्त्री ने इन्हें महासंगीत की संज्ञा प्रदान की है[1]।

1— डॉ० [illegible] "राजस्थान का इतिहास" की भूमिका में से पृ० ६